

रोगी केन्द्रित मनोचिकित्सा (Patient Centred Psychotherapy)

इस पद्धति का प्रतिपादन कार्ल रोजर्स ने (Carl Rogers) 1942 में किया था। इसके अन्तर्गत चिकित्सक रोगी की बातों को बड़े ध्यान से सुनता है परन्तु वह किसी प्रकार का परामर्श या सहायता नहीं देता है वह रोगी में इस प्रकार की अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करने का प्रयास करता है कि वह स्वयं अपनी समस्याओं को समझे तथा रोग के सम्बन्ध में निर्णय ले। इस प्रकार के चिकित्सा के अन्तर्गत रोगी को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। रोगी इस चिकित्सा के द्वारा बिना किसी भय के भावनाओं को व्यक्त करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। चिकित्सक के सम्मुख सप्ताह में एक या दो बार रोगी प्रातः एक घंटे के लिए आता है। उसे पहले से बता दिया जाता है कि एक निश्चित अवधि तक साक्षात्कार चलता रहेगा अगर वह देर से आता है तो बचे समय में ही साक्षात्कार होगा। चिकित्सक बहुत कम बोलता है तथा रोगी अपने समस्या के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि विकसित करता है तथा उसके समाधान के विषय में सोचता है। चिकित्सक जब रोगी के सम्बन्ध में जान लेता है कि उसमें अन्तर्दृष्टि की क्षमता आ गयी है तब वह अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन देता है जिसे रोगी स्वीकार करता है। रोजर्स (Rogers) ने इस पद्धति की सफलता हेतु पाँच आवश्यक चरण बताएँ हैं:—

(i) रोगी का सहायतार्थ आना—रोगी अपनी कठिनाई दूर करने के लिए चिकित्सक के पास स्वयं आता है। रोजर्स के अनुसार उपचार की सफलता रोगी की अपनी कठिनाई दूर करने की इच्छा से सम्बन्धित है। प्रथम साक्षात्कार में रोगी को उपचार की सुविधा से अवगत कराया जाता है। जिसमें चिकित्सक स्पष्ट रूप से कहता है कि जहाँ पर ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया जायेगा जिसमें रोगी अपनी समस्याओं का निराकरण स्वयं करेगा।

(ii) भावनाओं की अभिव्यक्ति (Expression of Feelings)—चिकित्सक सहानुभूतिपूर्ण वातावरण प्रस्तुत करके रोगी को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये उत्साहित करता है। इस प्रकार धीरे-धीरे रोगी में अन्तर्निहित घृणा विशेष तथा अवांछनीय भावनाओं को बाहर निकालने का अवसर मिलता है। चिकित्सक का कार्य है कि वह रोगी की इस भावनाओं को समझे। उन्हें स्वीकृति प्रदान करने तथा उन्हें इस प्रकार स्पष्ट करने का प्रयास करे जिससे रोगी उनके स्वरूपों को जानकर उन्हें अपने व्यक्तित्व का अपरिहार्य अंग समझकर स्वीकार करे न कि उन्हें बुरा समझकर अवदमित करने या किसी मनोरचना के द्वारा छिपाने का प्रयास करे। अपनी इन अनचाही भावनाओं की अभिव्यक्ति के बाद रोगी हल्के रूप से अपनी भावनाओं को चिकित्सक के समक्ष व्यक्त करता है। चिकित्सक को चाहिये कि वह इनको भी बिना प्रशंसा, आलोचना के स्वीकार करके इस प्रकार स्पष्ट करे जिससे रोगी उन्हें भी अपने व्यक्तित्व का अपरिहार्य अंग समझकर स्वीकार कर ले। यह कार्य बड़ा दुष्कर है। चिकित्सक को सावधानीपूर्वक सीमित कार्य करना होता है।

(iii) रोगी में सूझ-बूझ का उदय—अपनी भली तथा बुरी भावनाओं की स्वीकृति के फलस्वरूप रोगी अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अपनी जानकारी अथवा सूझ-बूझ उत्पन्न हो जाती है। रोजर्स तथा वैकेन का मत है कि जिस आँखों के सामने से रंगीन चश्मा हटा देने से वास्तविकता का ज्ञान होता है। इसी प्रकार रोगी के संवेग का स्पष्ट जानकारी होने पर वह स्वयं बाह्य वातावरण को अधिक परिपक्वता से समझने लगता है।

(i) रोगी स्वयं के अभिव्यक्तियों तथा इच्छाओं के वास्तविक स्वरूप को समझता है तथा स्वीकार करता है।

- (ii) उसे अपने व्यवहार के वास्तविक कारणों का ज्ञान हो जाता है।
- (iii) रोगी में जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण पैदा हो जाता है।
- (iv) उसमें अपनी समस्याओं के उचित निदान के लिये उपयुक्त मार्ग अपनाने की योग्यता का ज्ञान होता है।

(iv) **वांछित कार्यों को अपनाना**—अपनी समस्याओं तथा स्वयं के जानकारी के बाद भी रोगी यह निश्चित नहीं कर पाता कि वह क्या करे? इस अवसर पर चिकित्सक को चाहिये कि वह रोगी की समस्या समझकर उसे स्पष्ट करे किन्तु सलाह या निर्देश न दे। उचित मार्ग अपनाने का कार्य रोगी का है चिकित्सक का नहीं हो सकता है। प्रारम्भ में रोगी कठिनाई का अनुभव करे किन्तु जैसे ही रोगी आगे बढ़ेगा उसे धीरे-धीरे अपने पर विश्वास होने लगेगा और उसमें उपयुक्तता की भावना का उदय होगा। रोगी ऐसी दशा में स्वयं ही बढ़ने लगेगा।

(v) **सम्पर्कों की समाप्ति**—जैसे-जैसे रोगी स्वनिर्देशित मार्ग पर चलता है वैसे उसमें दूसरे से सहायता लेने की इच्छा कम हो जाती है और वह उपचार को समाप्त करने के सम्बन्ध में सोचने लगता है। रोगी द्वारा अपनी इच्छा से चिकित्सा से अवकाश ले लेना उसके स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन करके के सामर्थ्य का प्रतीक है। यह उपचार का अन्तिम चरण है जिसमें रोगी अपनी समस्याओं को स्वयं समझने लगता है। इस प्रकार चिकित्सक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

अतः स्पष्ट है कि इस पद्धति में— (i) उपचार की सफलता एवं निर्देशन का उत्तरदायित्व स्वयं रोगी पर है।

(ii) चिकित्सक का उत्तरदायित्व रोगी के समक्ष ऐसे वातावरण को प्रस्तुत करना है जिससे वह अपनी भावनाओं को बिना झिझक कह सके।

(iii) चिकित्सक रोगी की इच्छाओं को पहचानता तथा स्वीकार करता है। वह उसके बिना प्रशंसा या निन्दा के रोगी के सम्मुख ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत करता है।

(iv) रोगी को अपनी समस्याओं के प्रति सूझ-बूझ बढ़ती जाती है। इससे उसका अहम् पुष्ट होता है।

(v) चिकित्सक द्वारा प्रश्न करना रोगी को कुरेदना, दोषी ठहराना, सलाह देना, विश्वास दिलाना तथा किसी कार्य को करने के लिय बाध्य करना वर्जित है। रोगी को ही अपनी समस्याओं को सुलझाने का अवसर प्रदान किया जाता है।

मूल्यांकन—यह पद्धति साधारण प्रकार की असामान्यताओं को दूर करने में अत्यधिक लाभप्रद है। यद्यपि अधिक गम्भीर रोगी के उपचार में इस पद्धति की सफलता सन्देहास्पद है तथापि इस पद्धति का पहले की अपेक्षा अब अधिक उपयोग किया जाने लगा है। प्रो० कोलमैन का मत है कि रोजर्स द्वारा प्रतिपादित इस पद्धति ने अनेक महत्वपूर्ण खोजों को प्रोत्साहन दिया जिसके आधार पर मनोचिकित्सा के प्रक्रियाओं तथा परिणामों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध हुई है। इस सिद्धान्त ने वर्तमान में अनेक विचारकों, सिद्धान्त निर्माताओं तथा मनोचिकित्सकों के विचार को प्रभावित किया है।